अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म, जीव, माया, जगत तथा मोक्ष का स्वरूप

अरुण कुमार मिश्र

शोधच्छात्र
संस्कृत–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

कभी स्वर्ण–शरीर अगणित नक्षत्रों से परिपूर्ण, कभी शोभातिशायी जन–मन–मोहक हिमकर से समलंकृत, कभी भगवान भुवन भाष्कर की प्रचण्ड एवं प्रखर किरणों से सम्पन्न तथा कभी निरभ्र तो कभी विविध वर्णों के मेघों से प्रतिभासित नील व्योम मण्डल, एक ही क्रम में आती हुई ऋतुएं, सायं–प्रातः तथा रात्रि–दिन का अपरिवर्तनीय क्रम, स्थूलतम जीवों से लेकर सूक्ष्मतम नेत्रेन्द्रिय विषय–गोचर जीवों की सृष्टि, सृष्टि में भी मानव, हिरण, मयूर इत्यादिक जीवों के माध्यम से अभिव्यक्त होता हुआ वैचित्र्य, प्रकृति के वैभव का साकार स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए असंख्य प्रशान्त सागर, कल–कल ध्वनि से प्रवाहित होती अनेकों नदियाँ, नाना प्रकार के वृक्ष, पर्वत एवं इन सबसे परिपूर्ण अनेक देशों में विभक्त यह विशाल अवनि मण्डल जन्म लेते ही मनुष्य को उस आश्चर्य शिला पर समासीन कर देता है,[1] जहाँ पर उसका मस्तिष्क इस रहस्याकुल जगत् के रहस्य को सुलझाने के लिये विवश हो जाता है।[2] यहीं से दर्शनशास्त्र का उद्भव हुआ। भारतीय दर्शन को दो भागों में बाँटा गया है आस्तिक एवं नास्तिक। वेद को मानने वाले दर्शन को आस्तिक न मानने वाले को नास्तिक कहते हैं। आस्तिक दर्शनों में वेदान्त दर्शन उसमें भी भगवान शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैत वेदान्त प्रमुख है। भारतीय दर्शन का उद्देश्य मोक्ष के द्वारा दुःख त्रय की निवृत्ति कराना है।

अद्वैत वेदान्त में जीव–ब्रह्म ऐक्य द्वारा मोक्ष को प्राप्त करना बताया गया है। अद्वैत–वेदान्त में मोक्ष उस नित्य पदार्थ को माना गया है जिसके अधिगम से मनुष्य की पुनरावृत्ति नहीं होती। अद्वैत वेदान्त को समझने के लिये निम्न तथ्यों की आवश्यकता होती है।

1– ब्रह्म।
2– जीव।
3– माया।
4– जगत्।
5– मोक्ष।

Scanned with CamScanner

1– ब्रह्म

अद्वैत वेदान्त का प्रतिपाद्य तत्त्व ब्रह्म है जिसे अशनादि रहित, ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्णभेद विगत, असंसारी एकमात्र वेदान्त समधिगम्य बताया गया है।[3] यह नित्य, सर्वज्ञ, सर्वगत, नित्यतृप्त, नित्य, शुद्ध–बुद्ध, मुक्तस्वभाव, चैतन्य और आनन्द स्वरूप है।[4] अखण्ड, सत्, चित्, आनन्द, मन और वाणी का विषय न बनने वाले, तथा समस्त जगत् के अधिष्ठानरूप आत्मतत्त्व का अभीष्ट की प्राप्ति के लिये आश्रय ग्रहण करता है।[5] अस्थूलमनण्वम् (बृ0उ0 2–4–12) यह श्रुति वाक्य ब्रह्म का स्वरूप अभाव मुखेन प्रतिपादित करते हैं।

प्रभु सबसे पहले जीव की कल्पना करता है, फिर तरह–तरह के बाह्य और आध्यात्मिक पदार्थों की कल्पना करता है। उस जीव का जैसा विज्ञान होता है वैसी ही स्मृति भी होती है। आत्मा आकाश के समान है, वह घटाकाशों के समान जीवरूप से उत्पन्न हुआ है। तथा मृत्तिका से घटादि के समान देह संघात रूप से भी उत्पन्न हुआ कहा जाता है। इस प्रकार वह चैतन्य ही जीव रूप में भासित होता है।

इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय जिससे होते हैं वह ब्रह्म है।[6] जो नाम रूप से अभिव्यक्त हुआ है तथा अनेक कर्ता और भोक्ताओं से संयुक्त है, जो प्रतिनियत देश, काल और निमित्त से क्रिया और फल का आश्रय है, एवं मन से भी अचिन्त्य रचना रूप वाले इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय जिस सर्वज्ञ शक्तिमान कारण से होती है; वह ब्रह्म है। ऋग्वेद आदि शास्त्र का प्रमाण होने से सर्वज्ञ है।[7] वह आत्मतत्त्च चलता है, वह नहीं चलता है। वह दूर है समीप भी है। वह इस सबके अन्तर्गत है, वह ही इस सबके बाहर भी है।[8] ब्रह्म सर्वव्यापक है। वह आत्मा सर्वगत, शुद्ध, अशरीरी, अक्षत, शिराओं से रहित, निर्मल, पापों से रहित, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ है।[9] इस प्रकार ब्रह्म अखण्ड, अज, सच्चिदानन्द, सर्वज्ञ, नित्य, शुद्ध, बुद्ध तथा मुक्तस्वरूप है।

माया

ब्रह्म अपनी माया से इस जगत् की सृष्टि या रचना करता है। अविद्या, मिथ्या, भ्रम ये सब माया के पर्याय हैं। स्मृतिरूप पूर्वदृष्ट का अन्य में (अधिष्ठान में) अवभास (प्रतीति) वही अध्यास है।[10] स्मर्यमाण के सदृश पूर्वानुभूत की अन्य में प्रतीति अध्यासभास है। जैसे शुक्तिरूप अधिष्ठान में अज्ञान से कल्पित होने के कारण रजत अध्यस्त है। अविद्या न सत् है न असत्। यदि सत् होती तो सदा सर्वत्र होती किन्तु भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः इत्यादि श्रुतियों से ज्ञात होता है कि तत्त्वज्ञान से इसकी निवृत्ति हो जाती है। अविद्या असत् भी नहीं है क्यों ऐसा होने पर वह नामरूपात्मक प्रपञ्च के पदार्थ–सार्थ की अवभासिका न हो पाती। अहमज्ञः इत्याकारक अनुभव गोचर अविज्ञा को असत् नहीं कर सकते। अतः सत्, असत् विलक्षण होने के कारण माया अनिवर्चनीय है।[11] शंकराचार्य ने अपने ग्रन्थों में स्थान–स्थान पर अविद्या का अनादि, अनिर्वचनीय, त्रिगुणात्मिका, भावरूपा[12] तथा नैसर्गिकी[13] आदि शब्दों से वर्णन किया है। इस अविद्यात्मिका बीजशक्ति का आश्रय परमेश्वर है।[14]

Scanned with CamScanner

यद्यपि शांकर ग्रन्थों में अविद्या बहुशः परमेश्वराश्रित तथा परमेश्वर की शक्ति–रूप में वर्णित की गयी है तथापि यह आत्मा के स्वाभाविक धर्म के रूप स्वीकृत नहीं हो सकती। यदि इसे आत्मा के स्वाभाविक धर्म के रूप में स्वीकार किया जाय तो इसकी उच्छित्ति कदापि सम्भव नही है। जैसे सविता का स्वाभाविक औष्ण एवं प्रकाश किसी भी उपाय से नहीं निवृत्त किया जा सकता।[15]

यद्यपि परवर्ती अद्वैत वेदान्तियों ने माया तथा अविद्या इन दोनों में अन्तर किया है परन्तु आचार्य शंकर ने अविद्या, माया अज्ञान में कोई अन्तर नहीं किया है।

जीव

अन्तःकरण रूप उपाधि में चैतन्य सन्निधि के कारण अन्तःकरण स्वरूप से उत्पन्न चिदाभास जीवत्त्व व्यवहार का प्रयोजक है। दूसरे शब्दों में जीवत्त्व की प्रवृत्ति का निमित्त है। इस अन्तःकरणोपाध्यन्तः प्रविष्ट चिदाभास से अन्वित अर्थात् चिदाभासाविविक्तया अन्तःकरणपाध्यनुगत चित्प्रतिबिम्ब जीव पद वाच्य है। अज्ञान और आभास दोनो से अनन्वित शुद्ध चैतन्य बिम्ब है। इस जीव को बिम्ब का लक्ष्यार्थ कहा जाता है।[16] आत्मा उत्पन्न नहीं होता क्यों कि उसकी उत्पत्ति विषयक श्रुति नहीं होती है। जीव का नित्यत्त्व तथा अजत्त्व, अविकारित्त्व अविकृत ब्रह्म का ही जीवरूप से और ब्रह्मरूप से अवस्थान श्रुतियों से अवगत होता है।[17] न जीवो म्रियते, (जीव मरता नहीं)[18] यद्यपि चिदात्मा वस्तुकर्ता या भोक्ता नही है, प्रत्युत नित्य आनन्दरूप अपरिच्छिन्न और निष्क्रिय है तथापि विज्ञानमय कोश का अभिमानी बनने पर वह इहलोक और परलोक में गमन करने वाला व्यावहारिक जीव बन जाता है। उसके लोक और परलोक गमन करने का कारण कर्तृत्त्व और भोर्क्तृत्त्व है। सूक्ष्मशरीर तीन कोश विज्ञानमय कोश, मनोमय कोश और प्राणमय कोश से बनता है। चिदात्मा चिदाभास के रूप में जीव से उक्त है।[19]

वह प्रभु सबसे पहले जीव की कल्पना करता है, फिर तरह–तरह के बाह्य और आध्यात्मिक पदार्थों की कल्पना करता है। उस जीव का जैसा विज्ञान होता है वैसी ही स्मृति भी होती है। आत्मा आकाश के समान है, वह घटाकाशों के समान जीवरूप से उत्पन्न हुआ है। तथा मृत्तिका से घटादि के समान देह संघात रूप से भी उत्पन्न हुआ कहा जाता है।[20] इस प्रकार वह चैतन्य ही जीव रूप में भासित होता है।

जगत्

नामरूपों से व्याकृत, अनेक कर्ता तथा भोक्ता से संयुक्त, प्रतिनियत देशोत्पादक, प्रतिनियत कालोत्पादक, प्रतिनियत क्रिया तथा प्रतिनियत फल वाले पदार्थों के आश्रयभूत जगत्[21] को आचार्य शंकर ने बाह्य तथा आध्यात्मिक इन दो रूपों में विभक्त किया है।[22]

1– बाह्य जगत– नानाविध, शुभ, अशुभ तथा व्यामिश्र कर्मों के सुख–दुःख रूप फलों के साधन पृथिव्यादि लोक बाह्य जगत हैं।

Scanned with CamScanner

2– आध्यात्मिक जगत्– देव, तिर्यक, मनुष्यत्वादि, प्रकारक नानाविध जातियों से अन्वित, प्रतिनियत (असाधारण) अवयवों की संघटना वाले उक्त नानाविधकर्मों के सुख, दुःखात्मक फलों के अधिष्ठानभूत दृश्यमान शरीरादि आध्यात्मिक जगत् हैं। यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त उभयविध जगत् परस्पर भिन्न नहीं प्रत्युत परस्पर सम्बन्धित है। बाह्य जगत् भोग का साधान है तथा आध्यात्मिक जगत् भोग का आयतन।

आचार्य शंकर ने कहा है कि जो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव तथा शरीर से अधिक विशिष्ट ब्रह्म है; वही जगत का स्रष्टा है।[23] ब्रह्म जगत् का उपादान और निमित्त दोनों कारण है।[24]

परमार्थतः कार्यकारणातीत निष्प्रपञ्च ब्रह्म से प्रपञ्चप्रभव सम्भव नहीं है। इसलिये अविद्या प्रभूत जगत् तथा तत्सम्बद्ध वस्तु व्रात इन दोनों का आचार्य शंकर ने स्वप्नसम, क्षणिक, दृष्टनष्टस्वभाव, असार, अशुद्ध अनित्यादिरूप वाले मानते हैं।[25] जो आदि और अन्त में नहीं है (अर्थात् आदि और अन्त में असत् रूप है) वह वर्तमान में भी वैसा ही है। ये पदार्थ–समूह असत् के समान होकर भी सत् जैसे दिखायी देते हैं।[26]

मोक्ष

अविद्या–व्युच्छित्तिसमनन्तर जीव स्वात्मावस्थित हो जाता है।[27] जीव के इस स्वरूपावस्थान को मोक्ष कहा गया है। कुटस्थरूप तथा स्वतः सिद्ध होने के कारण मोक्ष अनारम्भ है।[28] नित्य, उत्पत्ति आदि विरूद्ध तथा विकार प्रतिषिद्ध होने के कारण मोक्ष स्वरूप न तो उत्पाद्य है और न विकार्य है। असाधन होने के कारण ब्रीहि पात्रादि के सामान संस्कार्य भी नहीं तथा प्रत्यङ्मात्र स्वभाव होने कारण आप्य नहीं है। कहने का अभिप्राय यह है कि मोक्ष उत्पत्ति, आप्ति, संस्कृति एवं विकृति इन चारों प्रकार के कर्मफलों से विलक्षण है।[29] मोक्ष वह धन है जिसका न तो आदि है, न अन्त, न मध्य और न भोग से क्षयशील है[30] इन मोक्षस्वरूपनिश्यचयात्मक वार्तिकों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मोक्ष ब्रह्म ही है।[31]

जिस अवस्था में इन्द्रियाँ विषयों का ग्रहण नहीं करती तथा मन भी स्थिरता को प्राप्त कर लेता है और यह लोक विषयिणी बुद्धि भी ज्ञान का काम नहीं देती किन्तु केवल आत्मा स्वसामर्थ्य ही उस अवस्था में अवशिष्ट रह जाता है। मननशील ज्ञानी पुरूष इसी अवस्था को मुक्ति अवस्था कहते हैं।[32] मोक्ष आत्मस्वरूप है। यह आत्मा किसी काल में न तो जन्मता है न तो मरता है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन, और पुरातन है।[33] ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है।[34]
इस प्रकार मोक्ष ब्रह्मस्वरूप है।

इस प्रकार उपर्युक्त तत्त्वों को समझने के बाद अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्त को बड़ी सरलता से समझा जा सकता है। अद्वैत वेदान्त में इन्हीं तत्त्वों को समझाया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

Scanned with CamScanner

1– अद्वैत वेदान्त में आभासवाद। पृष्ठ– 16
2– ब्र0 शा0 भा0 उपो0, पृ0 23
3– ब्र0 शा0 भा0 उपो0,1–1–4 पृ0 69
4– वेदा0– मं0– 1
5– ब्र0सु0– 2–2 पृ0 34
6– ब्र0सु0– 3–3 पृ0– 43
7– ई0–उ0– 5 पृ0 58
8– ई0–उ0– 8– पृ0 73
9– ब्र0सु0– पृ0 13
10– विवेक चूडामणि– 111
11– विवेक चूडामणि–110
12– ब्र0सु0 शा0भा0– 3–2–15 पृ0– 643
13– ब्र0सु0 शा0भा0– 1–4–3– पृ0 297
14– बृ0उ0–शा0भा0– 4–3–20 पृ0 556
15– अद्वैत वेदान्त में आभासवाद– पृ0 191
16– ब्र0सु0 शा0भा0– 2–3–17– पृ0 496
17– छा0 उ0– 6–11–3
18– वेदान्तसार– खण्ड 20 पृ0– 69
19– माण्डूक्य0– वै0– 16 पृ0 96
20– ब्र0सु0 शा0भा0– 1–1–2 पृ0 48
21– ब्र0सु0 शा0भा0– 2–1–1 पृ0 415
22– ब्र0सु0 शा0भा0– 2–1–22 पृ0 694
23– ब्र0सु0 शा0भा0–1–4–23 पृ0 339
24– उपदेश साहस्त्री– 2–17–20
25– मा0उ0– वैतथ्य– 6–पृ0 87
26– तै0 उ0– 33 पृ0– 11
27– वृ0उ0 भा0वा0– 3
28– वृ0उ0 भा0वा0 अ0– 3
29– सम्बन्ध वा0– पृ0– 300
30– अ0 आ0 वा9– 167
31– कठो0उ0– 2–3–10
32– गीता 2–20
33– बृ0उ0– 7–2–16

Scanned with CamScanner